eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

वैदिक काल, बौद्ध काल में धार्मिक एवं लौकिक जीवन सम्बन्धी पाठ्यक्रम : एक अध्ययन

डॉ0 शत्रुघन[1]

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर–शिक्षा संकाय, श्री कृष्ण जनका देवी स्ना0 महा मंगलपुर, कानपुर देहात (उ0प्र0)

Received: 15 April 2024 Accepted & Reviewed: 25 April 2024, Published : 30 April 2024

Abstract

वैदिक कालीन पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा का विशेष महत्व तथा इसके अन्तर्गत प्रमुख स्रोत चारो वेद व आर्य सभ्यता के लोगों का जीवन दर्शन मूलतः मोक्ष प्राप्ति से अनुप्राणित था। इसके लिए याज्ञिक अनुष्ठान आवश्यक एवं अपरिहार्य माना गया था। याज्ञिक कर्मकाण्डों से सम्बन्धित सिद्धान्तों एवं क्रियाओं का प्रतिपादन वेदों में विधिवत किया गया है। अतः इनके सम्पादन हेतु ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का अध्ययन–अध्यापन आवश्यक है। बौद्धकाल में ऋषि आश्रम भी विशिष्ट विषयक पाठ्यक्रम के स्रोत थे। सामान्यतः इनकी स्थिति विद्यालय की उपत्यकाओं में होती थी। कतिपय परिस्थितियों में इनकी स्थिति ग्रामीण परिसरों में होती थी। ये आश्रम आध्यात्मिक, तात्विक तथा दार्शनिक विषयों में विशिष्ट शिक्षा प्रदान करते थे। कभी–कभी विशेष आश्रमों में ज्ञान पिपाशु विद्यार्थियों की संख्या इतनी अधिक हो जाती थी कि ऋषि विशेष को शिक्षण कार्य के लिए पृथक आश्रमों की स्थापना करनी पड़ती थी।

कीवर्ड– वैदिक कालीन पाठ्यक्रम, बौद्धकालीन पाठ्यक्रम, लौकिक, धार्मिक

Introduction

वैदिक काल में आर्यों का समस्त जीवन दर्शन मोक्ष–प्राप्ति से सम्बन्धित था। अतः इसके लिए यज्ञादिक कार्यों को करके देवताओं को प्रसन्न करने का प्राविधान था। तत्सम्बन्धी सामग्री एवं नियमावली ऋक, यजुस तथा समान में संग्रहीत है। कालान्तर में इनकी कर्मकाण्डिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विवेचना हेतु ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद ग्रन्थों का सृजन हुआ। अतएव वैदिक कालीन शिक्षा के अन्तर्गत धार्मिक पाठ्यक्रम में वेद, वेदांग तथा उपनिषद आदि ग्रन्थ प्रमुख रूप से सम्मिलित थे। मोक्ष–प्राप्ति का द्योतक धार्मिक पाठ्यक्रम में था। अतएव इसके अध्ययन–अध्यापन के लिए विशिष्ट क्षमताओं एवं अभिरूचि की महती आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप इसके ज्ञानार्जन का अधिकार सर्वसाधारण वर्ग को प्रदान नहीं किया गया था। तत्कालीन आचार्य, विद्वान इस लक्ष्य से भलीभाँति अवगत थे कि यदि व्यक्ति विशेष की अभिरूचियों एवं क्षमताओं को ध्यान में रखकर वैदिक ज्ञान प्रदान न किया गया तो इसके परिणाम समाज सम्मत न होंगे। तत्कालीन युग में आचार्य एवं विद्वानगण विशिष्ट क्षमताओं से रहित स्वपुत्रों एवं शिष्यों को भी वेदादि की शिक्षा नहीं प्रदान कर सकते थे। विशिष्ट क्षमताओं से युक्त समर्पित व्यक्तियों को ही वैदिक ज्ञान प्रदान किया जा सकता था।

आदिकाल की शिक्षण व्यवस्था में धार्मिक पाठ्यक्रम से सम्बन्धित याज्ञिक क्रियायें सरल संक्षिप्त एवं साधारण थी। कालान्तर में सर्वसाधारण के लिए वैदिक मंत्रों के अर्थ को आत्मसात करना जब जटिल हुआ तो यह आवश्यक हो गया। विद्वान वेबर के अनुसार ''वैदिक मंत्रों के मर्मज्ञों के लिए यह आवश्यक और अनिवार्य हो गया कि वे सर्व साधारण को इनके अर्थ और भाव से विज्ञ करवायें। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

हेतु पर्यटक विद्वान समूह रूप से इनके चारो ओर एकत्रित होने लगे। इन लोगों ने विद्वानों की ख्याति के अनुसार ही एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रायें की।'' कालान्तर में विभिन्न वैदिक ग्रन्थों में वर्णित यज्ञविधान से सम्बन्धित व्याख्याओं, विवेचनाओं एवं सन्दर्भ सहित विपुल लौकिक साहित्य का उद्भव हुआ। तदन्तर विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उसका विभाजन किया गया। इस प्रकार लौकिक साहित्य का क्रमबद्ध स्वरूप सर्वप्रथम यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तरीय संहिता में अनुशासन, विद्या, वाकोवाक्य, इतिहास, नाराशसि तथा गाथा के रूप में उपलब्ध होता है।

उपर्युक्त लौकिक विषयों तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं ने कालान्तर में वेदांग आदि लौकिक साहित्य को विकसित किया। प्राचीन वेदांग सर्वाधिक कल्प प्रतीत होता है। अपितु यज्ञ विधान के निश्चित नियमों के जानने की आकांक्षा के फलस्वरूप कल्प का सृजन हुआ। वैदिक अनुष्ठानों का विवेचनात्मक ज्ञान प्राप्त करने के परिणामस्वरूप निरुक्त का उद्भव सम्भव हुआ। वैदिक पाठ्यवस्तु का ध्वनि नियमों के अनुसार उच्चारण करने की इच्छा के परिणामस्वरूप शिक्षा का विकास हुआ। स्वरूप छन्द का प्रादुर्भाव वैदिक वाड़मय को कलात्मक स्वरूप प्रदान करने की उत्कण्ठा के आधार हुआ। वैदिक पाठ्यवस्तु की पदादि की प्रकृति की जिज्ञासा के परिणामस्वरूप व्यापकरण का उत्कर्ष हुआ। ज्योतिष का उन्नयन यज्ञ–सम्पादन हेतु शुभ मुहूर्त के अभिज्ञान के फलस्वप हुआ। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में वेदांग आदि लौकिक पाठ्यक्रम का सूत्रपात वैदिक अनुष्ठानों एवं क्रियाओं के स्पष्टीकरण हेतु किया गया। कालान्तर में वेदांग तथा अन्य लौकिक साहित्य वैदिक अध्ययन से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके स्वतंत्र सम्प्रदाय के रूप स्थापित हुए तथा प्रत्युत्तर में अन्य सहायक लौकिक विषयों को विकसित किया।

उपर्युक्त धार्मिक एवं लौकिक पाठ्यक्रम के अतिरिक्त वैदिक कालीन भारत में परम्परा के आधार पर अनेक व्यवसायों, उद्योगों एवं शिल्पों का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। औपचारिक शिक्षा न ग्रहण करने वाले छात्र शिक्षण–संस्थाओं में इनके द्वारा अपनी जीविकोपार्जन करते थे। इन्हीं व्यवसायियों एवं उद्यमियों ने कालान्तर में उपजातियों के रूप वर्गीकृत होकर वैसा ही रूप धारण कर लिया। ऋग्वेद में ब्रह्मा, भिषक, कामरि और धम्मन शब्दों का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में प्रयुक्त होने वाले रथद्वार, कामरि और सूत्र तथा वैचिरीय संहिता में आने वाली क्षतृ, संग्रहित तक्षान् रथकार, कुलाल, कामरि, निशाद और श्वनि आदि शब्द भी विशेष व्यवसायों के ही द्योतक हैं। इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग वाजसनेय संहिता में मिलता है। तैत्तरीय ब्राह्मण में मागध, सूत, भीमल, रथकार, वक्षन् मणिकार, सरकार, कष्टकार आदि शब्दों का प्रयोग आर्थिक संगठन की उन्नत दिशा का बोध कराता है। वही शतपथ ब्राह्मण में कुलाल चक्र का भी प्रयोग हुआ है।

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत वेद वेदान्त, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, श्रोत–सूत्र, गृह्य–सूत्र, धर्म–सूत्र तथा सुल्व क्षेत्रादि ग्रन्थों के अतिरिक्त विविध विद्याओं, कलाओं और विज्ञानों को भी पाठ्यक्रम में स्थान प्रदान किया गया था। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों एवं शास्त्रों के अध्ययन करने से ही इन विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। अनेक लौकिक विषययों का प्रादुर्भाव व विकास धार्मिक साहित्यिक विषयों के सन्दर्भ तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्य विषयों का उद्भव हुआ। अथर्व वेद में प्राचीन इतिहास, पुराण, गाथा तथा नागरिकशास्त्र आदि विषयों का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय के अन्तर्गत ऋक, यजुस, सोमन, अथर्व, गिरस, इतिहास, पुराण तथा गाथा का वर्णन मिलता है। गोपथ ब्राह्मण में भी वेद, कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद इतिहास, अन्याख्यान पुराण अनुशासन एवं वाको वाक्य

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

आदि विषयों का वर्णन किया गया है। ताण्डव ब्राह्मण में राशि, व्याकरण तथा निरूक्त आदि विज्ञानों का विवरण उपलब्ध होता है।

छान्दोग्यपनिषद के अनुसार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास– पुराण अथवा पंचक वेद, पित्रय राशि, निधि, वाकोवाक्य, एकायन, वेद–विद्या, भूत विद्या, धन–विद्या, नक्षत्र–विद्या, सर्प–विद्या तथा देवयज्ञ आदि अध्ययन के प्रमुख विषय थे। वृहदारण्यक उपनिषद में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वगिरस इतिहास, पुराण, उपनिषद, सूत्र अनुव्याख्यान तथा व्याख्यान आदि विषयों का उल्लेख मिलता है।

इसी तरह आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वेद, शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण छन्द तथा ज्योतिष आदि विषयों का उल्लेख प्राप्त होता है। विष्णु धर्म सूत्र के शब्दों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, वेदांग, इतिहास पुराण अध्ययन–अध्यापन के विषयक समाहित हैं। गौतमकृत न्याय सूत्र में वेद धर्मशास्त्र, अंग उपवेद तथा पुराण आदि विषयों का वर्णन मिलता है। बोधायन गृह्यसूत्र में वेद, कल्प अंग तथा सूत्रादि पाठ्य विषयों का सन्दर्भ मिलता है।

बौद्ध कालीन धार्मिक एवं लौकिक जीवन सम्बन्धी पाठ्यक्रम

बौद्ध विचारकों के लिए वैवाहिक जीवन बाधायुक्त एवं रागयुक्त था। ऐसे वातावरण में उच्चतम जीवन की सम्भावना नहीं रहती थी। गृहस्थ जीवन प्रज्जलित आवा के समान है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रकार के निवृत्ति मूलक अनेकानेक कथन बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होते हैं। इसी निवृत्ति का प्रधान कारण संसार और जीवन की आसक्तता है। यहाँ प्रत्येक वस्तु नश्वर है। उद्भव और अन्त ही संसार का एक मात्र नियम है। जो वस्तु उत्पन्न हुई है वह नष्ट अवश्य होगी। यह संसार नितान्त निराशामय है। अतः बुद्धिमान को सांसारिकता में नहीं पड़ना चाहिए। प्रबज्या एवं विराग के द्वारा मनुष्य जीवन–मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। एक कवि ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि–

''पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात,
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा प्रभात।''

यह जीवन ओस के बिन्दु के समान क्षण–भंगुर है। राहुग्रसित चन्द्रमा की भाँति कालान्तर में प्रत्येक मनुष्य कान्तिहीन हो जाता है। व्यक्ति आजीवन धन धान्य संग्रह करता रहता है। परन्तु मृत्यु के समय उसके समस्त इष्ट पदार्थ इस संसार में छूट जाते हैं और उसे एकाकी प्रस्थान करना पड़ता है। पुनः सांसारिक जीवन छल–बुद्धमय है। एक जातक में एक शिष्य अपने गुरू से मन में पल्लिवित संस्य रूपी समस्याओं के समाधान हेतु प्रश्न पूछता है कि इस सांसारिक जीवन में सफलता प्राप्त करने हेतु किन–किन वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप गुरू ने कहा कि इस सांसारिक जीवन में सफलता प्राप्त करने हेतु प्रवंचना एवं दुराचार की आवश्यकतायें होती हैं। अस्तु उसने विचार किया कि प्रकार के सफल जीवन से तो परिव्राजक जीवन उत्तम है।

इस निवृत्ति मूलक दार्शनिक विचारधाराओं को क्रियान्वित करने के लिए बौद्ध दार्शनिकों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने धार्मिक पाठ्यक्रम की व्यवस्था की थी, व्यक्ति विशेष द्वारा संघों अथवा विहारों में प्रदान की जाती थी। शिक्षार्थियों को विनय, सुत्तन्त तथा अभिधम्म आदि धार्मिक विषयों के साथ ही बौद्ध दार्शनिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों का भी अनुशीलन करना पड़ता था। अन्य सम्प्रदायों के साथ धार्मिक वाद–विवाद में बौद्ध धर्म की

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए इन्हें जैन और हिन्दू दर्शन का भी आत्मीकरण करना पड़ता था। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति संघ में प्रवेश करके ज्ञार्नाजन कर सकता था। संघ प्रवेश के पश्चात् भिक्षु पूर्ण रूप से संघ के नियंत्रण और अनुशासन में आ जाता था। वह अपने समस्त कार्यों के लिए संघ के प्रति उत्तरदायी था। भिक्षु समुदाय में व्यवस्था बनाये रखने के लिए बौद्धों ने सुविशाल दण्ड विधान का विकास किया था इसके अन्तर्गत पश्चाताप से लेकर संघ बहिष्कार तक के दण्ड उल्लिखित हैं।

यद्यपि बौद्ध धर्म की प्रथम अवस्था में शिक्षा का प्रबन्ध बौद्ध विहारों में धार्मिक विषयक पाठ्यक्रम की ही शिक्षा प्रदान की जाती थी। परन्तु कालान्तर में बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाये रखने के लिए तथा सर्वसाधारण के भौतिक कल्याणार्थ संघों में लौकिक शिक्षा भी प्रदान की जाने लगी। वैदिक युग की तरह इस काल में लौकिक शिक्षा धार्मिक पाठ्यक्रम की सहचरी नहीं थी। अब इसका अध्ययन स्वतंत्र रूप से किया जाता था। लौकिक पाठ्यक्रम में सन्निहित विषयों के अध्यापन के लिये विशिष्ट अध्यापकों की नियुक्ति की जाती थी। इन्हीं की देखरेख में विद्यार्थी मनोवांछित विषयों का चयन करके उनमें दक्षता प्राप्त करते थे।

इस युग में लौकिक पाठ्यक्रम बहुमुखी था। इसमें समयानुकूल सभी जीवनोपयोगी एवं समाजोपयोगी विषयों को सन्निहित किया गया था सैद्धान्तिक शिक्षण के साथ ही इनका प्रायोगिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। विशेष विषयों का प्रायोगिक प्रशिक्षण आचार्य विशेष के स्व निर्देशन में सम्पन्न होता था तथा सामान्य विषयों का व्यावहारिक ज्ञान स्वयं छात्र प्रापत करते थे। पृथक–पृथक विषयों के शिक्षण के लिए अन्य शिक्षकों की नियुक्ति की जाती थी। विषयों में प्रायोगिक ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रयोगशाला एवं उपकरणों की व्यवस्था रहती थी। बौद्ध शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत लौकिक विषयों में सर्वाधिक लोकप्रिय आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्वेद, तन्त्र विद्या तथा वास्तुविद्या एवं विधि शास्त्र आदि विषय थे। आयुर्वेद का पाठ्यक्रम अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत था। इसमें पशु चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा भी सम्मिलित थी। धनुर्वेद विषय भी बहुत अधिक लोकप्रिय था। प्रायः देश के सभी राजकुमार इसमें प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश लेते थे। गन्धर्व वेद में नृत्य, गायन, वादन आदि विद्याओं का समावेश किया गया था। पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियाँ इसमें अधिक रूचि लेती थीं। तंत्र विद्या में सम्मोहन विद्या, इन्द्रपाल विद्या, वशीकरण विद्या सम्मिलित थी। इस युग में इनकी लोकप्रियता भी बहुत अधिक थी। वास्तुविद्या इस युग में उच्च शिखर पर थी। भवन निर्माण कला, मूर्तिकला तथा चित्रकला आदि इसमें सम्मिलित थी नालन्दा तथा विक्रमशिला। आदि विश्वविद्यालयों के अवशेष तथा तत्कालीन समय के निर्मित विहार तथा स्तूप भवन निर्माण कला का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। खनन कार्य में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्ति मूर्तिकला का मूर्त स्वरूप है। अजन्ता नामक गुफाओं की चित्रकला आज भी पूरे विश्व में अपना अद्वितीय स्थान रखती है। इस काल में विधि शास्त्र के अध्ययन का भी पर्याप्त प्रचलन था। तक्षशिला में इसके अध्ययन के लिए सुदूर प्रान्तों से लोग आते थे और प्रशिक्षणोपरान्त समाज की सेवा में तल्लीन रहते थे।

इस प्रकार उपर्युक्त जीवनोपयोगी लौकिक बिषयों के अतिरिक्त वैदिक युग की भाँति इस काल में भी पारिवारिक परम्परा के आधार पर लोकोपयोगी व्यवसायों अथवा शिल्पों का शिक्षण प्रदान किया जाता था। सामाजिक संगठन के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में शिल्पजीवी ग्रामों में कृषक परिवारों के आश्रम में रहकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। क्रमशः बौद्धकाल में व्यवसायों की वृद्धि के साथ ही शिल्प जीविकों ने अपना स्वतंत्र संगठन प्रारम्भ कर दिया था और वे धीरे–धीरे ग्रामों को छोड़कर नगरों की ओर बढ़ने लगे

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

थे। यहाँ उन्हें सामाजिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक सुविधायें भी विशेष रूप से प्राप्त थी। नागरिक जीवन के विकास के साथ ही व्यवसायों की उन्नति भी होने लगी थी। शिष्य समाज के द्वारा अपनी व्यवस्था को संगठनात्मक समूहों के रूप में प्रारम्भ की थी तथा व्यवसायों का संगठन समूहों के रूप में प्रारम्भ होने लगा था। बौद्ध साहित्य में इन व्यावसयिक समूहों का बोध कराने के लिए श्रेणी और पूरा शब्दों का प्रयोग हुआ। जातकों के वर्णनों से इन शिल्प–समूहों की स्थिति का अभ्यास होता है। तत्कालीन समाज व्यवस्था में इन श्रेणियों की इतनी शक्तिशाली स्थिति हो गयी थी कि वे अपने वर्ग की रक्षा करने तथा स्ववर्ग के व्यक्तियों के द्वारा अधिकारों का दुरूपयोग करने पर उन्हें अपदस्थ करने में समर्थ होने लगी थी। इन श्रेणी समूहों को अपने विवादों का निर्णय करने का पूर्ण अधिकार था। अठारह श्रेणी समूहों का उल्लेख बार–बार मिलता है।

इस तरह संगठन की दृष्टि से ये व्यावसायिक श्रेणियाँ परम्परागत उत्तराधिकार की प्रथा पर आधारित थीं। जातकों से पष्ठिक कुल, सट्ठवाह पुव्व, घण्ण वणिज कुल तथा पष्ठिक कुल आदि का प्रयोग परम्परागत व्यवसाय के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। व्यावसायिक सम्बन्धों का क्रमशः प्रगाढ़ होने के साथ ही इन श्रेणी समूहों में आत्मनिर्भरता की वृद्धि होने लगी और शनैः शनैः उन्होंने विवाह तथा खान–पान के सम्बन्ध में अपनी प्रथाओं को निश्चित कर लिया था। कालान्तर में वे शिल्पकार जातियों के रूप में परिवर्तित हो गये और अपना–अपना जीवन शिल्पकार जाति के रूप में जीवन व्यतीत करने लगे थे। स्थानीयकरण की दृष्टि से शिल्प–समूहों का प्रभाव नगरों और ग्रामों के व्यावसायिक क्षेत्रों में परिलक्षित होता है। नगरों में दन्तकार तीथी रजक तीथी, सुरापाण तथा तंत वित्तट्ठान आदि शब्द विभिन्न व्यवसायों के स्थानीयकरण को चरितार्थ करते हैं। नगरवीथियों की तरह ग्रामीण अंचलों में व्यावसायिक ग्राम भी अपनी महत्वपूर्ण स्थिति के लिए प्रसिद्ध थे। ऐसे ग्राम स्वतंत्र रूप से देश के भू–भाग में स्थित थे। वे स्वयं ग्रामीण क्षेत्र के हेतु व्यावसायिक केन्द्र की भाँति थे। आस–पास के गाँव के लोग उस ग्राम में जाते थे और कृषि तथा अपनी आवश्कयकता की सभी वस्तुयें वहाँ लेते थे। इसके अतिरिक्त आन्तरिक प्रशासन की दृष्टि से भी शिल्प समूह अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। प्रत्येक शिल्प समूह का नेतृत्व एक प्रमुख अथवा ज्येष्ठ के द्वारा होता था। ऐसे शिल्प प्रमुखों के प्रमाण हमें जातकों में यथेष्ट रूप से मिलते है। इनमें बडढ़कि जेट्ठक, मालाकार जेट्ठक तथा वम्मार जेट्ठक के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कभी–कभी इन शिल्प प्रमुखों की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती थी। यह समृद्ध होने के साथ–साथ राजा के कृपा पात्र भी होते थे। सुक्ति जातक में एक ऐसे समृद्धशाली कम्मार जेट्ठक के राजा का कृपा पात्र होने का उल्लेख मिलता है। शोधकर्ता के अध्ययनानुसार बौद्ध ग्रन्थों में इन प्रमुख व्यवसायों की संख्या प्रायः अठारह बताई गई है। परन्तु इनकी संख्या इससे कहीं अधिक प्रतीत होती है। बौद्ध जातकों में वस्त्र–शिल्प समूह, काष्ठ–शिल्प समूह, आभूषण–शिल्प समूह, कुम्भ–शिल्प समूह, चर्म–शिल्प समूह, प्रस्तर–शिल्प समूह, हस्त दन्त–शिल्प समूह तथा कम्मार–शिल्प समूह आदि व्यावसायिक श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। परन्तु कुछ अन्य ऐतिहासिक पुस्तकों में इनकी संख्या अधिक दी गयी है।

इस तरह जातक कहानियों में व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाले व्यक्ति के लिए 'अन्तेवासिक' शब्द का प्रयोग हुआ है। वह अपने व्यावसायिक पिता के पास रहकर शिल्प ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता था। इन विभिन्न व्यवसाय समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों में मतभेद हो जाता था तो उसका निर्णय महाश्रेष्ठि करता था। इसकी स्थिति सभी श्रेणियों के प्रधान के रूप में थी।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

बौद्ध शिक्षा व्यस्थान्तर्गत भिक्षुओं के लिए धार्मिक पाठ्यक्रम का अध्ययन अध्यापन अनिवार्य एवं आवश्यक था। संघ में प्रवेश करने के उपरान्त नव प्रवेशित भिक्षुओं को धार्मिक ग्रन्थों का अनुशीलन दस वर्षों तक करना पड़ता था। भिक्षुओं के धार्मिक पाठ्यक्रम में 'धम्म' विनय तथा सुत्तन्त आदि ग्रन्थों का सन्निवेश किया गया था। धम्म कथित धम्म पर विचारों का आदान प्रदान करते थे। सुतन्ति, सुत्तन्त का विवेचन करते थे। विनयधर पर उपदेश देते थे। चुल्लवग्ग के अनुसार धर्म विषयक पाठ्यक्रम का स्पष्टीकरण करने के उपरान्त उपाध्यायगण शिष्यों का परीक्षण करते थे महाधम्म के विवरणानुसार धार्मिक पाठ्यक्रम को कंठस्थ करने के उपरान्त छात्र–श्रवण–श्रावण, वार्तालाप तथा वाद–विवाद आदि विषयों के मध्यम से इसकी पुष्टि करते थे राइड डेविडस के मतानुसार निर्दिष्ट धार्मिक विषयों का अध्ययन करने के उपरान्त उच्च प्रतिभा वाले छात्र बुद्ध द्वारा निश्चित किये गये चतुर्ज्ञानों का अभ्यास करते थे। जैसा कि शोधकर्ता ने विभिन्न सन्दर्भ ग्रन्थों में पढ़ा है कि वैदिक धर्म में व्याप्त विभिन्न दोषों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही बौद्ध धर्म का अभ्युद्य हुआ था। अतएव अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने हेतु यह सदैव प्रयत्नशील रहता था। वैदिक धर्मावलम्बियों के साथ धार्मिक विषयक वाद–विवाद में बौद्ध धर्म की श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए बौद्ध आचार्यों ने भिक्षुक को वेदवेदांग सहित न्याय, वैशेषिक, योग तथा सांख्यादि आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों के अध्ययन हेतु भी उत्प्रेरित किया।

बौद्ध धर्मानुसार भिक्षुओं के लिए शरीर का आच्छादन करना आवश्यक था। इसलिए अन्तश्वसिक, उत्तरसंग और संघादि तीन वस्त्रों (त्रिचीवर) की व्याख्या की गयी। प्रारम्भ में ये वस्त्र लोक व्यक्त अथवा श्मशान–प्राप्त वस्त्रों से निर्मित किये जाते थे। कालान्तर में भिक्षु इन्हें भिक्षा के रूप में ग्रहण कर सकता था। अन्ततोगत्वा भिक्षुओं को ही कताई, बुनाई तथा सिलाई का प्रशिक्षण प्रदान करके वस्त्रों के निर्माण की व्यवस्था संघ में ही कर दी गयी। इस प्रकार वस्त्र निर्माण में भिक्षुगण स्वावलम्बी होते हुए सामान्य लोगों को भी आत्मनिर्भर बनाने लगे। वस्त्र निर्मित हो जाने के पश्चात् विशिष्ट समारोह में आवश्यकतानुसार भिक्षुओं के मध्य इनका वितरण किया जाता था। इस समारोह को कथन कहते थे। संघ में भिक्षुगण सामूहिक जीवनयापन करते थे। इनके सम्यक रूप में संचालित करने के लिए आवास में अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। खाद्यान्न संचय करने के लिए एक भाण्डागारिक होता था। भिक्षुओं में अन्न, फल, भिक्षा–पात्र एवं अल्प सामग्री के विभाजित करने हेतु क्रमशः संघमत्त, फलभाष्क, पत्तगाहापक तथा अप्पगत्तक विस्सज्जक नामक अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। समय–समय पर आवास में नवीन कक्षों, भवनों तथा प्राचीरों का निर्माण होता था। यह निर्माण कार्य नवकम्मिक के निरीक्षण में होता था। सामान्यतया सम्पूर्ण आराम की देख–रेख का उत्तरदायित्व, आरामिक पृथक पर होता था। विविध वस्तुओं का ब्योरा रखने के लिए इन्हें लेखन गणना तथा रूपम (मुद्राव्यस्था) आदि का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था।

सामान्यतः मिलिन्द पन्हों में भी बौद्ध भिक्षुओं के पाठ्यक्रम का विवरण मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार इन्हें भगवान बुद्ध से सम्बन्धित गद्य–संकलन, पद्य–संकलन जन्म–कथाओं तथा देवीय गाथाओं आदि का अनुशीलन करना पड़ता था। निर्माणाधीन भवनों का पर्यवेक्षण तथा उपहारों एवं भेटों का भी प्रबन्ध भिक्षुओं के धार्मिक कृत्यों का अंग था। युवान च्वांग के भारतीय यात्रा विवरण में भिक्षुओं के पठन–पाठन की झलक मिलती है। इसके अनुसार बौद्ध बिहारों में शिष्यों को सर्वप्रथम 'सिद्धम' (वर्णमाला और संयुक्ताक्षरों से सम्बन्धित द्वादशध्यायी) का अभ्यास कराया जाता था। तदन्तर उन्हें व्याकरणशास्त्र, शिल्पशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, तर्कशास्त्र तथा आध्यात्मशास्त्र आदि पाँच विज्ञानों अथवा शास्त्रों की शिक्षा प्रदान की जाती

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए इस प्राथमिक पाठ्यक्रम का अनुशीलन अत्यावश्यक था।

इत्सिंग के भारत–यात्रा विवरण से भी बौद्ध भिक्षुओं के पाठ्यक्रम का संकेत मिलता है। इसके अनुसार सर्वप्रथम भिक्षुओं को सिद्धिरस्तु नामक वर्णमाला पुस्तक का अभ्यास कराया जाता था। तदनन्तर धर्मशास्त्र (प्रातिमोक्ष विनय, सूत्र, शास्त्र) काव्यशास्त्र, गद्यशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, शिल्पशास्त्र, चिकित्साशास्त्र तथा आध्यात्मशास्त्र आदि विषयों का शिक्षण प्रदान किया जाता था। इस पुस्तक का अध्ययन विद्यार्थियों को छः महीने पूरा करना होता था। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित शिक्षा प्रणाली व प्राथमिक शिक्षा एवं पाठ्यक्रम का वर्णन 'ललित विस्तार' में मिलता है। ललित विस्तार में उल्लिखित है कि कुमारबोधिसत्व को आचार्य ने 64 प्रकार की अक्षर दृश्य रूपी लिपियों का ज्ञान दिया था। लिपि ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस समय चन्दन या काष्ठ की पट्टिका का प्रयोग किया जाता था। ललित विस्तार में लिखित 64 लिपियाँ निम्न हैं–

1. बृह्मी 2. खरोजी 3. पुस्करसारि 4. अंग 5. बंग 6. मगध 7. मांगल्य, 8. अंगुलीय, 9. शकारि, 10. बृह्मावलि 11. पारूस्य 12. द्रविड़ 13. किराय 14. दाक्षिण्य 15. उग्र 16. संख्या 17. अनुलोम 18. अवमूर्द्ध 19. दरद 20. खाण्य 21. उत्क्षेयावृत 22. निक्षेपावृत 23. पादलिखित 24. द्विरूत्तर 25. सर्वभूतरूत गृहस्थ 26. गंगन प्रक्षेणी 27. मध्याहारिणी 28. धारिणीप्रेक्षिणी 29. मध्याक्षर विस्तार 30. देव 31. पुस्य, 32. यक्ष 33. नाग 34. महोरग, 35. गरूण 36. असुर 37. गन्धर्व 38. मृगचक्र 39. किन्नर 40. भीमदेव 41. वायसरूत 42. अपरगोड़ानी 43. आन्तरिक्ष देव 44. पूर्णविदेह 45. उत्तर कुरूदीप 46. निक्षेप 47. विक्षेप 48. प्रक्षेप 49. चीन 50. लून 51. हूण 52. बज्र 53. सागर 54. लेखन्प्रति लेख 55. उत्क्षेयावृत्त 56. वादलिखित 57. द्विरूत्तरपद सन्धि 58. पावद्वशोत्तर पद सन्धि 59. शास्त्रावर्त 60. अनुद्रुत 61. सर्वरक्तसंग्रहणी 62. विद्यानुलोमाभि मिश्रित 63. ऋषिपट पात्र 64. सर्वोसधि निस्यन्द।

अतः परवर्ती काल में बौद्ध मनीषियों ने बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए जनसहयोग एवं सहानुभूति का अनुभव किया। अतएव उन्होंने सामान्य जन समुदाय के कल्याणार्थ संघों ने लौकिक पाठ्यक्रम की व्यवस्था की। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा मात्र भिक्षुओं के निर्मित ही न रह करके सर्वसाधारण के लिए भी अपने द्वार खोल दिये। सम्भवतः बौद्ध धर्म ने सम्पूर्ण समुदाय की शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रथम ई0 के प्रारम्भ में लिया। पाठ्यक्रम में धार्मिक विषयों के साथ ही जीवनोपयोगी एवं लौकिक विषयों के सम्मिलित किये जाने के कारण बौद्धकाल में धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई। पाठ्यक्रम में लौकिक विषयों का समावेश स्पष्टतः पढ़ा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऐतरेय उपनिषद : अष्टउपनिषद, ग्रन्थ द्वितीय अद्वैत आश्रम (1973)
2. छान्दोग्य उपनिषद : आर्य प्रकाश पुस्तकालय, आगरा (1955)
3. कथावस्तु : भिक्षु जगदीश कश्यप, चौखम्बा विद्याभवन (1978)
4. थेरी गाथा : एन0के0 भागवत, बम्बई (1937)
5. दीर्घ निकाय : सम्पादित भिक्षु जगदीश कश्यप,चौखम्बा (1978)
6. मिलिन्द पन्हो : भिक्षु जगदीश कश्यप, मूल सहित हिन्दी अनुवाद (1978)
7. मंज्झिम निकाय : भिक्षु जगदीश कश्यप, सम्पादित भाग1–3 (1976)
8. अल्तेकर : एजूकेशन इन एन्शियेन्ट इण्डिया महोहर प्रकाशन वाराणसी

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 03, Issue 04, April 2024

9. उपाध्याय बलदेव : वैदिक साहित्य और संस्कृत शारदा मन्दिर, काशी (1958)
10. गुप्ता एस0एन0 दास : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी, ग्रन्थ प्रथम, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली प्रथम संस्करण (1975)
11. दास, सन्तोष कुमार : द एजूकेशन सिस्टम ऑफ एन्शियेन्ट हिन्दूज, कलकत्ता, मिश्रा प्रेस (1933)
12. मैक्समूलर : हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड प्रेस पंचम संस्करण (1958)